P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-5* (Part-1) January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

दर्दपुर उपन्यास – एक विवेचन

रूबी जुत्शी
सहायक प्राध्यापक,
हिंदी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय ,
श्रीनगर, भारत

सारांश

अल्पसंख्यक चाहे किसी भी धर्म में लोग हों उनको कुंठित जीवन जीना पड़ता है जब उनका कोई दोष नहीं होता है। दोष अगर है तो वातावरण का क्योंकि चारों ओर ऐसा बातावरण बनता है जिससे वो भयभीत हो जाते हैं और अपने गाँव, शहर छोड़ने पर विवश होते हैं।

'दर्दपुर' उपन्यास कश्मीरी पंडित हिंदी लेखिका क्षमा कोल का एक बहुचर्चित उपन्यास है। सन् २०१४ में प्रकाशित प्रस्तुत उपन्यास सन् १९८९ से कश्मीर में चल रही उथल पुथल से प्रान्त में रह रहे अल्पसंख्यक का विस्थापन और घाटी में रह रहे बहुसंख्यक की कथा व्यथा है विस्थापित अग्नि शेखर जी का मानना हैं कि विस्थापन का मुख्य कारण यही था रू–

"हम बचाएंगे
अपने बीज
और विरोध अपना"[1]

इस अजीब नागहानी की शिकार केवल एक दो समुदाय ही नहीं बल्कि भिन्न भिन्न रूपों में कश्मीर तथा कश्मीरियत इससे त्रस्त हो रही है यह सच है कि जहाँ भी लोग अल्पसंख्यक में होते है उनको खौफ में ही जीवन जीना पड़ता है जिसके कारण अपनी अगली पीड़ी को बचाने के लिए अक्सर पलायन करने के लिए विवश भी होते है चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम। इतना ही नहीं उस समुदाय के साथ उनके देवी देवता भी सुरक्षा की मांग करते है तो सामान्य जन की बात नहीं। मंदिर फौजी छावनियों का रूप धारण कर लेता है जिससे इन मंदिरों का सौन्दर्य लुप्त ही नही होता है बल्कि इनका महत्त्व भी कम होता जा रहा है क्योंकि किसी भी समय कोई भी आकर दर्शन नहीं कर सकता केवल चारों तरफ का वातावरण भयानक सा प्रतीत होता है रू– "बदले हुए गली–कूचों में से गुजरी कार। उसने अपने साथ अहंकार कर लिया था। मैं पहचान लूंगी गणपति का भव्य द्वार जहाँ की ओर मुख करते हुए ही दृष्टि वितस्ता की मस्त लहरों पर नाव–सी सवार हो जाती ....जहाँ से सूरज अपनी धुप की पतंगें भेजता और हम लूटते और काटते ...मन की करते। तोबा,वह पहचान न पायी।....कड़ी कांटेदार तार को पार कर,फिर एक गुफानुमा बैंकर पार कर,वह घुस आयी।...और नीचे से बह रही वितस्ता एक फव्वारा बनकर उसके भीतर चली आयी थी"।[2] इसमें कोई संदेह नहीं कि बंकरों से मंदिरों का भव्य सौंदर्य बिगड़ गया है वह मंदिर कम और फौजी छावनियां अधिक लगती है किन्तु यह भी सत्य है कि इनके ही संरक्षक में यह सब सुरक्षित रहे है वरना कोई भी आकर ऐसे स्थानों पर बस जाते है जिससे इस क्षेत्र के वातावरण में कई रंग देखने को मिलते जो यहाँ के लोगों के लिए ठीक सिद्ध नहीं होता। वैसा देखा जाए परिस्थितियां परिवर्तित हो गई है। आज धर्म का स्थान विज्ञान ने, ईश्वर का मानव ने, आस्था का स्थान बुद्धि ने विश्वास का स्थान तर्क ने ले लिया।

मुख्य शब्द : अल्पसंख्यक, विस्थापित, कश्मीरियत, बीज, नागहानी छावनियाँ बैकर, मंदिर, ईश्वर, मानव।

प्रस्तावना

आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व इस ब्राह्मण समुदाय के लोग इतने नाजुक नहीं थे जितने वह जम्मू में जाकर हो गए है। पहले आस्था के कारण धूप के धुंए को पी लेते थे किन्तु विज्ञान के विकास से आज अशिक्षित मानव भी धूप के धुए से दूर भागता हुआ नजर आता है कहीं बीमारी पकड़ न ले क्योंकि आज का प्रत्येक मानव अपने स्वास्थ्य के प्रति अति जागरूक है पहले हम आँख बंद कर के हर चीज पर विश्वास करते थे किन्तु परिस्थितियां बदल गई अगर कोई अलोकिक बात भी होगी तो उस पर भी पूछताछ करके ही उसपर विश्वास करते है, दूसरा कारण यह भी है कि अधिकाँश कश्मीरी चाहे मुसलमान–हिन्दू विशेष तौर पर विस्थापित लोग जमींदार वर्ग के ही थे। वह दिनभर अपने खेतों

में काम करने में व्यस्त रहते थे तब उनको केवल कमाने की चिंता रहती थी न कि किसी प्रकार के संक्रमण की किन्तु तीस वर्षों ने उनके तथा सम्पूर्ण कश्मीर का रहन सहन, सोच विचार में गम्भीर परिवतन लाया जिसक कारण वह अब स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरुक हो रहे है क्योंकि अब उनके पास इस पर सोचने के लिए समय है। यही कारण है कि अब छोटे–छोटे चीजों पर विशेष ध्यान देते है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस लेखन का उद्देश्य यही है कि कबीर और नानक को याद करके मानव को धर्म के आधार पर अलग मत कीजिए धर्म मानव से है, मानव धर्म से नहीं।

कश्मीरी पण्डित तथा कश्मीर मुसलमान कितना भी एक दूसरे से दूर क्यों न हो फिर भी यह एक दूसरे का विशेष ध्यान रखते है क्योंकि दोनों समुदाय एक दूसरे के बिना अधूरे से लगते है कारण यही है कि इनकी भाषा,संस्कृति,वेशभूषा एवं जीने की विधि एक जैसे ही है केवल यह धर्म से ही एक दूसरे से भिन्न है और साथ ही यह दूसरे धर्म के प्रति बहुत ही आस्था रखते है तथा एक दूसरे के धर्म का भी विशेष ध्यान रखते है रू– "बैरे को ऑर्डर देकर सुमोना गुलशनआरा के इफ्तार का इन्तजाम कर रही है"[3] अगर लेखिका ने अपने पात्र सुमोना के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास किया है कि एक संप्रदाय को दूसरे संप्रदाय के प्रति कितना प्रेमभाव रखता है तो प्रेम में इतनी घृणा नहीं उत्पन्न हो सकती है कि वे उन्हें पहचानने में किसी प्रकार की देरी करेंगे क्योंकि हर संप्रदाय में बीस प्रतिशत लोग मानवता से वंचित रह सकते है बल्कि हर संप्रदाय में अस्सी प्रतिशत लोग एक दुसरे के लिए प्रेरणा स्रोत ही होते है रू– "डॉ.दिलशाद और डॉ. अजरा जैदी।कहा होंगे वे इस समय ? क्यों न मैं उनकी खोज करूं ? हूँ ....?कैसे ....कहाँ, किस्से पूछूँ ....? यदि वे कहेंगी '...हम वे नहीं ....हमें कुछ नहीं याद ...हम नहीं जानती ..."[4]। हमारे मन एवं मस्तिष्क में एक धुंधलापन उत्त्पन हुआ है। इस धुंधलेपन को हम अपने दिलों से बाहर निकाल करके एक दूसरे के समीप आकर वैसे ही रहने का प्रयत्न करना चाहिए जैसे सन् १९८९ से पहले हम एक साथ रह रहे थे। दूसरा संवाद पढ़कर मुझे आश्चर्य होता है की संग्रोम (सिंहपुर पटन) में क्या ऐसी घटना कभी हुई होगी है या लोग ऐसी काल्पनिक बाते जोड़ते है जिससे पाठक के मन में पुनरू शोषक एवं शोषित वाली प्रवृति जाग उठती है तथा पुनः विचार करन लगता है कि एक भाई दूसरे भाई के हरकतों को उछाल कर अपने आपको उच्च दिखाने की होड़ में लगा है रू– "पंडितों के सेबों का क्या करते हो ? "कुछ नहीं उनके सब काट–काटकर जला दिए गये है।अगर आर्मी दखल नहीं देती तो गाँव के लोगों ने बाँटनी शुरू की थी ....?।"[5] किन्तु सम्पूर्ण कश्मीर की सच्चाई यह नहीं है अगर एक आध जगह कहीं ऐसा हुआ भी होगा किन्तु शतप्रतिशत बात सही नहीं है। अधिकाँश विस्थापित समुदाय के मन में यह बात वास कर बैठी है। जब कभी भी वो सर्दियों में कश्मीर किसी कारणवश आते है तो उनको लगता कि जो लकड़ी यहाँ बुखारियों में जलाई जाती है और प्रत्येक व्यक्ति गर्मी का आनंद लेता है वह विस्थापितों की संपत्ति का स्वाह है। लेखिका ने भावुक होकर अपनी संवेदना इस प्रकार अभिव्यक्त की है रू– "उसे लगने लगा ये वही पण्डित के बागों की लकड़ियाँ है ...सेबों के पेड़ों की टहनियां और तने जिन्हें नूरा अब दियासिलाई दिखाएगा।.. गर्मी फैलेगी ....हमारे जिस्म गर्माएंगे।"[6] बुखारी में जलने वाले लकड़ी, उपले तथा जलती प्रकाश को लेखिका अपनी आत्म सम्वेदना के साथ जोड़ रही है कि जिससे बुखारी से गर्मी सेक रही थी उसमें में उसकी सारी यादें जलकर भस्म हो रही है किन्तु जलते जलते भी यह दूसरों की जान बचने में काम आती है और जिनको इस चीजों के साथ जीवन बसा था वह इस वास्तविकता से अनभिज्ञ होकर अपनी जिन्दगी चलने में मस्त है।

संवेदनशील वाक्य मानव के मन पर गम्भीर चोट तो पहुंचाती है। किन्तु सच्चाई देखे तो जितनी हानि सुरक्षा बलों से हुई चाहे वह कश्मीरी पुलिस ही क्यों न हो। विस्थापित समुदायों के मकानों पर रह कर उनकी दरवाजो की लकड़ियाँ निकाल कर जला दी यहाँ तक कि कुछ कश्मीरी पुलिस के जवानों ने खातोबंद निकाल कर अपने घरों में छपवाया है और कुछ मकान इस लिए जलाए गये ताकि कही सुरक्षा बल इन मकानों में बैठ न जाए। यही वास्तविकता है पक्षपाती रहकर न कुछ लिखना चाहिए न कुछ बोलना चाहिए। सच की परख करके ही किसी चीज पर तर्क–वितर्क करना चाहिए। लेखिका कहीं कहीं पर गलतफहमी की शिकार भी है उनका मानना है कि रोज्दारी में कश्मीर प्रान्त में खाने पीने को कुछ भी नहीं मिलता है किन्तु ऐसा तीस प्रतिशत में सही हो सकता है किन्तु 70% तो दुकानें तथा खाने पीने की चीजें तो मिलती है कोई भूखा नहीं रहता। प्रान्त में बहुसंख्यक होने के कारण कहीं कहीं हलकी सी धिक्कत तो आ जाती है किन्तु इतना भी नहीं है "इस शहर में अब रोज के दिनों में दिनभर खाने को कुछ भी नहीं मिलता। यदि आप दूसरे धर्म के भी हो तो भी। आप खा पियेंगे कुछ इफ्तार में ही या सहरी में ही। यह तो सरासर गलत है ऐसा परिवेश यहाँ दूर दूर तक नहीं है किसी भी क्षेत्र का सही आंकलन अगर न कर सके तो उसके प्रति घोर अन्याय के सामान होता है क्योंकि लेखन कार्य पक्षपात रहित ही ठीक तथा सफल रहता है वरना आलोचकों तथा शोधार्थी के मन में तरह तरह की शंकाएँ उत्पन्न होती है और इन शंकाओं तथा जिज्ञासा को शांत करने के लिए उत्सुक रहता है। यही कारण रहे है कि यहाँ के लोग कुंठित है।

गगनचुम्बी देवदारु के सघन वनों से घिरा पवित्र कश्मीर के चारों ओर पर्वत ही पर्वत और मध्य में कछारी सौंधी का उपजाऊ भूखंड है। आसपास पर्वत ही पर्वत होने के कारण देवदारु की गहन हरियाली व्याप्त है, जिससे यहाँ का जलवायु नम्र है। कश्मीर क्षेत्र अपने अनुपम सौन्दर्य के लिए भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में स्वर्ग तुल्य माना जाता है किन्तु पूस के आते ही यहाँ एकदम से दम घुटने लगता है और लोग विस्थापित पक्षियों की भांति यहाँ से चलना पसंद करते है सर्दी में वहां का मौसम काट खाता है ...इतना उदास करता है कि लोग दिल्ली भागने की सोचती हूँ ...कुछ दिनों के लिए ही कम से कम ..."।[8] "खूबसूरती कितनी उदास भी होती है,

यह जानना खूबसूरती को जान्ने के बाद का दूसरा जरूरी कदम है"।[9] यही कारण रहा है यहाँ के पचास प्रतिशत कश्मीरियों को इन महीनों में दरिद्रता का भी सामना करना पड़ता है क्योंकि यह लोग पांच महीने के लिए चावल, कोयले एवं लकड़ी आदि का जखीरा करते थे जो यह सब कर नहीं सकते थे या तो वो टूटकर बिखरे जाते थे या तो अपने घरों को छोड़ कर दूसरे राज्य में मजदूरी या नौकरी करने के लिए चले जाते थे और है भी। आज परिस्थिति कुछ भिन्न है जो पूंजी पति लोग है वह तो कम से कम आठ महीने घाटी से निकलकर जम्मू या भारत के गरम राज्य में अपना जीवन व्यतीत करते है जिससे विस्थापन जैसे भयंकर शब्द अर्थहीन हो गया है।

यह केवल कहने की बात है कि भगवान खुदा एक है, संसार में प्रत्येक धर्म के लोग एक दूसरे को भगवान–खुदा के नाम से विभाजन करते है और दूसरे को अपने धर्म से कमत्तर दिखने की होड़ में लगे रहते है जिसके कारण साम्प्रदायिक दंगे सामान्य हो रहे है। नाम को देखते ही आस्था डगमगा जाती और हम नीच से नीच शब्द भी इससे जोड़ने में हिचक नहीं करते है,कारण केवल इतना है कि अपने अल्प ज्ञान के कारण हम एक दूसरे के धर्म अर्थात भगवानध्खुदा को बांटकर ऐसे शब्दों को मुंह से निकालते है जिसको पढ़ने से मानव के मन में कम्पन उत्पन्न होती है। इस समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब कबीर, नानक, दादू आदि संत कवियों की भांति मानवतावाद पर बल देगे और हिन्दू–मुस्लिम, सिख–ईसाई का भेद मिटा कर समंवयमूलक विचार धारा रखकर मनुष्य मनुष्य के बीच जाति, वर्ग, धर्म, सम्प्रदाय की कोई दीवार खड़ी न करें बल्कि आज के मानव को आस्तिकता, सच्चरित्रता, करूणा, प्रेम से रहने की अतिआधिक आवश्यकता है। आज से आठ सौ वर्ष पूर्व जिन बातों को विचारपूर्वक कहा गया उनपर पुनः विचार करना और उनकी प्रासंगिकता देकर कभी हम लोग एक दुसरे के धर्म को न अपशब्द दे सकते है और न ही आज की परिस्थितियों का सामना करना पड़ता क्योंकि इस प्रसंग को छेड़ने से दो दिलों में ठेस पहुंचती और दरार पड़ कर दिन प्रति बढ़ती ही जाती है बल्कि घटने का नाम ही नहीं लेती है जिससे किसी भी धर्म के अल्पसंख्यको को अपनी मात्रभूमि अपने घर, अपनी भाषा, अपनी संस्कृति अपनी सभ्यता अपना भाईचारा अपना परिवेश अपनी मित्रता तथा सदियों से बने रक्त रिश्तों से अधिक करीब रिश्तो (चाहे वह दूसरे धर्म से ही क्यों न हो) छोडकर अपनी अस्मिता बचाने में जीवन के अंत ठोकरे खाने पड़ते है। कुछ तो इन्हीं ठोकरों के बीच जिन्दगी संभालते है किन्तु कुछ हमेशा के लिए विलुप्त हो जाते है। अतः अल्लाह हो या भगवान् प्रत्येक मानव को इज्जत करनी चाहिए आर न ही मानव को अपने धर्म के नाम से पुकारना चाहिए क्योंकि प्रत्येक धर्म बहुत ही संवेदनशील है। विशेष तौर इसका विशेष ध्यान नई पीड़ी को रखना चाहिए। किसी भी धर्म की पुराणी पीढ़ी बड़ी ही समझदारी के साथ प्रत्येक चीज को निभाते आये है और निभा भी रहे ह किन्तु युवा पीढ़ी जोश में आकर अच्छे–बुरे का ध्यान रखकर कुछ भी कर लेते है और कुछ भी बोलते रहते है और न ही एक दूसरे को सम्मान की दृष्टि से देखने के इच्छुक ही है। हमारे मन में कोई कोई हीन भावना दूसरे धर्म के प्रति नहीं होनी चाहिए। धार्मिक समन्वयवाद, मानव कल्याण के लिए मानवतावाद, जीवन में सच्चरित्रता तथा सत्य का प्रचार ही जबतक हमारे जीवन का ध्येय नहीं बनेगा तब तक हम सांप्रदायिक दंगों में झूलते रहेंगे जिससे हमारी आने वाली पीढ़ी भी इस समस्या की शिकार होती रहेगी। लेखिका को कई सदियों से इस धरती के साथ जुड़े है तो इसका कश्मीर के साथ प्यार होना उस मिटटी के प्रति झुकाव होना स्वभाविक है। उनको मानना है कि मानव के लिए प्रत्येक भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि किसी भी भाषा के बिना हम अधूरे है और जिस भाषा का ज्ञान न हो उस भाषा को सुनकर एवं बोलने वालों के सामने मानव पस्त होता है काश उन्हें भी ज्ञान होता तो वह खुले तौर पर अपने मन का आदान प्रदान कर सके –सुमोना सोच रही है अगर वह भी कश्मीरी भाषा जानती होती, तब वह भी नूरा से उसकी भाषा में बातें कर सकती भी बिना भाषा के एक मानव गूंगा एवं बहरा जैसा प्रतीत होता है। बिना भाषा को जानने सुमोना क्या अनुसन्धान कर सकती थी क्योंकि सुमोना एक मिश्रित परिवार की लड़की थी माता बंगाली और पिता पंजाबी। किन्तु विस्थापन के पश्चात जब वह अपना परिचय देती है तो वह इस बात का संशोधन करती है कि उसकी माता जी कश्मीरी ही है।

निश्कर्श

भारतीय संस्कृति की पहचान अलग ही है। इस संस्कृति में कश्मीरी पंडितों कि संस्कृति इसे भी भिन्न और अलग है। यहाँ के पंडितों कि वेशभूषा, रीतिरिवाज, तौर तरीके, रहने के ढंग, खान–पान एवं बर्तन आदि सब भारतियों से भिन्न है। यहाँ के प्रतिष्ठित घरों तथा ज्ञानवान पुरुषों का पहनावा अन्य पुरुषों से एकदम भिन्न था "वे नोकदार पैजार पहने हुए दर्दपुर के संदर्भ में। फिरण के बाजू इतनी लम्बी होती थी वह फेरन की बाजू निकाल क्र उसपर चाय का खोस जो लौय का भोल बवुल जैसा होता था जो चाय ढालते ही बहुत गर्म होते थे इसलिए कश्मीरी पंडित फेरन कि आस्तीनीय पर अर्थात दाई हाथ से कुलचा रखकर चाय पी लेते थे शीट डालना दूर की बात थी किन्तु आज सामाजिक विकास होते ही कश्मीर के पण्डितों की संस्कृति में भी घोर परिवर्तन आया है विशेष तोर विस्थापन स इन ब्रह्मनों की संस्कृ ति,भाषा,वेशभूषा,आदर सत्कार ही स्वह हुआ है वह सारे बर्तन बेच क्र क्रोकरी की व्यवस्था घर में बनी है जो उन पुराने चीजों अर्थात बर्तनों आदि का प्रयोग अभी भी करते है तो उनको दकियानूसी विचारों वाले दोष से लेस होना पड़ता है और वह द्ररिताके वर्ग में गिने जाते है क्योंकि ज्यूँ ज्यूँ हम नये चीजों को अपनाते है त्यूं त्यूं हम अपने आपके आधुनिक लोगो तथा पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर अपने आपको सिद्ध कर देते है। पुराने श्रीनगर में यह घोर समस्या रही है कि यहाँ मस्जिदों के सहन छोटे होने क कारण सड़कों पर नमाज पडनी पडती है जिससे इस समुदाय को कई धिक्कतों का सामना करना पड़ता है। सरकार को तथा आस पास के लोगो को मिलकर इन दिक्कतों का सामना ही नही बल्कि सम्पूर्ण हल निकालना चाहिए। पुरानी प्रथा होने के उपरान्त भी इक्कीसवी सदी

में यह समस्या का हल नहीं निकला है इसका कोई न कोई अच्छा हल निकाल कर इस समुदाय के लोग आराम से अपनी नमाज अदा कर सके। अतः इन्ही कई कारणों से यहाँ के लाग चाहे वः किसी भी समुदाय से क्यों न हो कुंठित जीवन व्यतीत कर रहे है।

अंत टिप्पणी

1. *श्री क्षमाकौल, दर्दपुर, उपन्यास, प्रकाशन वर्ष : 2014, प्रकाशक – ज्योतिपर्व प्रकाशन, पृ. 6।*
2. *श्री क्षमाकौल, दर्दपुर, उपन्यास, प्रकाशन वर्ष : 2014, प्रकाशक – ज्योतिपर्व प्रकाशन, पृ. 13*
3. *श्री क्षमाकौल, दर्दपुर, उपन्यास, प्रकाशन वर्ष : 2014, प्रकाशक – ज्योतिपर्व प्रकाशन, पृ.15*
4. *श्री क्षमाकौल, दर्दपुर, उपन्यास, प्रकाशन वर्ष : 2014, प्रकाशक – ज्योतिपर्व प्रकाशन, पृ.15*
5. *श्री क्षमाकौल, दर्दपुर, उपन्यास, प्रकाशन वर्ष : 2014, प्रकाशक – ज्योतिपर्व प्रकाशन, पृ. 16*
6. *श्री क्षमाकौल, दर्दपुर, उपन्यास, प्रकाशन वर्ष : 2014, प्रकाशक – ज्योतिपर्व प्रकाशन, पृ. 20*